

* वर्च्च तथा वर्चपनः सामाजिक, सांस्कृतिक तथा इतिहासिक

समझ \Rightarrow

वर्च्च, वर्चपन और सामाजिक रण की मूल संख्या अधिक तथा स्थानों के अनुसार निरन्तर विभिन्न ढंगों में होते हैं। पूर्वोक्त परिवार, समाजिक एवं सामाजिक वर्च्च तथा वर्चपन एवं उनके समाजिक उत्तरों की विभिन्न तरीकों द्वारा साझना से अनेक विकास की व्यवस्था की बहुत नियामक और आपराधिक इकाई है। वर्चपन मात्र ऐसे निर्मित ही नहीं होता, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक निर्मित भी होता है। समाज अपनी विभिन्न गतिविधियों द्वारा प्रतिग्राही के माध्यम से व्यक्तियों के समाजीकरण की व्यवस्था करता है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में वर्चपन एवं विवालय आदि उड़ानिका में सामाजिकरण के व्यवस्थापूर्ण एवं नियमन में माता-पिता, परिवार, पड़ोस, समुदाय, भीड़िया तथा विषयालय आदि उड़ानिका महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

वर्च्चा एक सामाजिक - सांस्कृतिक इकाई होता है। हर सामाजिक - सांस्कृतिक परिषेष्टा में वर्च्च एवं वर्चपन की अलग - अलग भवित्वों से होता जाता है। इस व्याति द्वारा वर्च्चा वर्चपन में वर्च्च वर्चपन की समझ अलग - अलग होता है। वर्च्च, आधिकृत सामाजिक दशा आदि वर्च्चे के वर्चपन की दृष्टिकोण के द्वारा निर्धारित हो जाते हैं; अभिभावक, कर्ता के वर्च्चों का पालन - पोषण आधिकृत द्वारा, एवं सुरक्षा के माध्यम से होता है। वर्च्चों के दृष्टिभाल के लिए कानिकल सुध - सुविद्यालै अलब्ध कुरायी जाती है, वर्च्चों की व्यातीय संस्कार एवं सामाजिक सीधियों की सिद्धान्त जाता है। इनमें यह भी घोनना जरूरी है कि वर्च्चा लड़ाके लड़कों, दोनों के लालचू पालन में बहुत आनंद है। आधा गरी लोग लड़कियों की अपेक्षा लड़कों का बहुत तरीके से लालचू - पालन करते हैं।

वर्चपन की इतिहासिक समझ यह बताती है कि विश्व की कई प्राचीन सभ्यताओं में भी लालचूवस्था और उत्तोरावस्था

के नीचे के समय को वर्चपन माना जाता है। प्रसिद्ध इतिहासकार फिलिप एशेज के अनुसार यही मानवीय समाज में बृद्धि को एक व्यवस्था शामाजिक मानवशास्त्रीय भी पर्याप्त में नहीं इस व्यापक मध्यकालीन समाज पर्याप्त एवं और प्रभु व्याप्ति के उन्हें पिता या अभिभावक के नियंत्रण खेद सहा के आवधि रखने के पश्च में था। वही इसटी और पारस्परिक मानवीय इकट्ठाएँ का अधिकारी मानते हुए उनमें आत्मनुरासन, आज्ञानारिति, निष्पलता इत्यादि शुण्डों को आवश्यक मानता है।

* समाजकृषण की समस्या: अवधारणा, कार्ड तथा विविध शिरोः -

व्यापक समाज में जनों लेता है और जनों से ही वह समाजिक विश्व का अंग बन जाता है। इस समाजिक विश्व में परिवार, निर्मिति - समूह ज्ञान आदि सभी त्रामिण हैं। इन सभी के साथ व्याप्ति अर्थ सबको का ताना - बाना बनाता है जो जीवन पर्याप्त चलना रहता है। व्याप्ति अर्थ से व्याप्ति रहता है, उसके समाजिक व्यसार के फौलान होता जाता है। वह वर्ग में विद्यालय जाता है। विद्यालय के कार्य स्थल और फिर यहाँ निर्मिति में योगदान देता है। अर्थ से व्याप्ति व्याप्ति जड़ा जीता है। वह अपने परिवेश, विशेषज्ञता से अपने परिवार, समूदाय विद्यालय, निर्मिति - व्यवस्था व अन्य सम्बाद प्राप्ति से निर्मिति - सीखता रहता है और संविधान व्यवहार के द्वारा विद्यालय निर्मिति के पुनर्निर्मिति के रूप में वह अपने जीवन को ढालता है। इसके द्वारा अपने वर्च लोग बढ़ता है। इसके लिए परिवार जाति, समूह, धर्म, जैसी जो जाति कितनी ही खँस्याएँ और प्रक्रियाएँ में बदल देती हैं, विनिज्ञन समाजिक और आर्थिक परिवेश में पलने वाले व्यक्ति की घटति निवारण - नियन्त्रण प्रकार की घटती है।

समाजीकरण वह अन्तः उत्थात्मक प्रक्रिया है, जिसमें
धूरा व्यक्ति अपने समूह के मूल्य, विश्वास, मान्यता,
मानदण्ड और आविष्कार की विश्वेषताएँ अर्जित करता
है। इन सीस्ट्रक्चरिक तत्वों की अर्जित करने के
लिए रान व्यक्ति की अपनी पहचान और व्यक्तिकृत
का निर्माण होता है। समाजीकरण मूलतः सूक्ष्मी
क्षेरा सौफ़स्यों द्वारा समाज के तरीके सीखने
की प्रक्रिया है। इसका अभिप्राप्त यह है कि
व्यक्ति सीस्ट्रक्चरि के तत्वों की आनंदसार्वता के
अपन व्यवहार की समाजिक मान्यताओं के
अनुरूप परिमार्जित कर समाज का संरक्षण
बनता है।

इस समाजशास्त्री समाजीकरण की स्व-
अवधारणा के निर्माण के रूप में देखते हैं।
आधमीय और पारस्परिक संबंधों के सदर्भ में
इन और पहचान के विकास की समाजीकरण
का केन्द्रीय अंग समझा जाता है। विष्वास के रूप
में दमास क्षेत्रों के साथ गहरा संबंध होता है।
जलनिय द्वारा समाजीकरण की उस प्रक्रिया की
समझने की आवश्यकता है जो बहिर्भूत वस्तु पर
प्रभाव छालनी है। व्यक्तियों में विचार प्रक्रियाएँ
समाजीकरण के दैरेन विकास होती हैं। अतः
समाजीकरण के दैरेन विकास होती है, जो इस
पीढ़ी से लगते ही दूरी की सम्पूर्णता लिया जाता
है। समाजिक निरंतरता इसके दृष्टि लिए
समाज द्वारा द्वीपत या निर्धारित मानदण्डों मूल्यों
और नियमों का अनुपालन करने के लिए।
सामाजिक दैरेन - रिवायत, व्यापारिक अनुष्ठान, खानपिक
समरोद्ध के रूप में पर्दपर्याएँ आदि के तरीके
में, जिनमें समूह रुक्क - इस्कूप के साथ दृष्टि
दृष्टि है। विवाह, जन्म और मृत्यु आद्याधारों
रूप व्यापारिक उत्सवों जैसे अपलर्य पर समूहिक
सहभागिता इसके उद्दारण है।

* बच्चों द्वारा समाजीकृण : माता - पिता, परिवार, पड़ोस, चौपटे इन समूहों की भूमिका ⇒ समाजीकृण कुर्से वाली संस्था के रूप में मानव मूलता वाक्तव्य में अखाद्यारण है। यह क्षमा जागा है। मौं के त्याग और पिता की सुरक्षा में रहने वाले व्यापक शुद्ध सीखता है, वह उसके विविध दो स्थानों पर्याप्ति होती है। परिवार या घार की सभी समाजिक शुणों द्वारा उद्दरण्मान स्थल माना जाता है। यह प्रधम समाजिक इकाई होती है। बच्चों के वहले परिवार में जन्म लेकर परिवार का सहस्य रूप है। उसका एक समैल्ला समैक्षण्य अपनी मौं सुधमा है। मौं उसे इस भिलती है और तरह-२ में उसकी रक्षा करती है। बच्चे द्वारा नियमित रूप से खोने - पीने की प्रवृत्ति की तथा रहने की सीख भिलती है। मौं और बाप से बच्चे की अधिकतर आकृशकता है पूरी होती है साथ ही बच्चा यह हैरत है कि शुद्ध चाहीं द्वारा कुर्से पर मौं या पिता इस व्यार करते हैं। उसकी प्रवृत्ति करते हैं और शुद्ध चाहीं के कुर्से से उसकी भिलता है। उसकी जिन्होंने होती है। मौं अपने बच्चे को व्यार करती है, परिवार के अन्य लोग भी उसे व्यार करते हैं। वह उसके साप होता है। बोलते हैं।

परिवार में याप: ऐसे अधिक सहस्य होते हैं। इनमें से प्रत्येक के अलग - अलग भिजान, जयि, व्यवहार, करीकूँ, भावनाएँ आदि होती हैं। यहाँ इनमें से प्रत्येक के साप व्यापक धनिष्ठ समैक्षण्य स्थापित करना जाता है, मौं उस परिवार के एक दोष - से छाया में उसे दरमारहना पड़ता है।

परिवार में रहने वाले बच्चे मौं - बाप से समाजिक उत्तरदायित्व का अप्रभाव का मैत्री और समैक्षण्य की आवश्यकता है और अपनी मौलिक धारणाओं, आदर्शों की रक्षना करता है।

* बाल अधिकारों का संदर्भ :-

बच्चे एवं बचपन की अवधारणा में जागृतचूड़ परिवर्तन इस दिशा में भी हुआ उ कच्चे कु लिए व्यस्तों द्वारा किए जाने वाले कार्यों काल कल्याण, जो परिभाषा में आते थे। बच्चों के हड़कु के रूप में परिभाषित करते हुए, इनकी संविधानिक जो वाकहेटी सुनिश्चित हो गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३१ और ४५ में बच्चों के लिए १४ वर्ष तक की आम सभा संव्यासन लिया गया है। बोल सम निषेध द्वारा नियमन कार्य १९८६ १४ वर्ष की उम्र तक के व्यक्ति को बच्चों की प्रतीक्षा में रखता है वहीं इसरी और बोगानी के द्वारा कार्य १९५४ बचपन की अवधारणा, जो १४ वर्ष तक मानता है। समाज की बच्चों के अधि संवेदनशीलता व द्वया तो स्थलकृती है। बच्चों का महत्व वास्तों के समान नहीं है। क्योंकि अधिकार सिर्फ व्यस्तों का ही होता है उ बच्चों का नहीं। अदि गार से हृत्येष्व बच्चों के हितों की अत्यधिक तुक्तसुन पहचान काली प्रवाहे सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का हिस्सा होती है। और पीढ़ी विधमान रहती है।

जन्म से पूर्व गर्भवस्था तथा जन्म के १४ वर्षों तक बच्चे अपने से बड़े के संरक्षण में रह जहाँ अपना जीवन - भावन करते हैं। सभी बच्चे की ज्ञाने बचपन की मूलभूत सुविधा और अधिकार जाप दो, उन्हें स्वाधीनता, ज्ञान व ज्ञानिभव माईल मिले, ताकि आजी की सामाजिक प्रणाली और जीवन दो के हतर बनाने का उन्हें उम्दा अवधर मिल सके।

सीयुक्त, राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों की विवरव्यापी व्याख्या की है तथा सभी सद्मति व्यक्त की है कि "हर व्यक्ति का जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक सम्पत्ति आदि जैसे गंदमाव के बिना पुढ़त अधिकर और स्वाधीनताएँ प्राप्त हैं।

बाल अधिकार भी प्रमुख है:-

- (1.) बीन का अधिकार
- (2.) विकास का अधिकार
- (3.) संरक्षण का अधिकार
- (4.) सहभागिता का अधिकार

भारत के संविधान के प्रमुख बाल अधिकार हैं-

- (1.) राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग
- (2.) बाल कल्याण समिति
- (3.) बीजा का अधिकार अधिनियम 2009
- (4.)

* शिक्षा, विद्यालय और समाज: अंतर्राष्ट्रीयों के सामाजिक मानन एक सामाजिक-स्थितियुक्त प्राणी है। वह समाज के ही जितनासु दोगा होता वालक के जन्म के बाद शुरुआती चरण में परिकार के सदस्यों के बीच रखा है। वात्याकथा के दृग्गम में वह विद्यालय भाना शुरू करा है तथा अपने आख-पड़ोस के भी बानार्जन करा होता वहाँ जन्म के समय बीचित्र प्राणी के रूप में होता है। समाज के सामाजिक प्राणी बनाने की कोशिका करता है। वह प्रविद्या जिसके माध्यम से कोई प्रवित्र प्राणी एक सामाजिक प्राणी के रूप में बिक्सित करता है, सामाजिकरण कर्त्तव्य है। सामाजिकरण कामाजिक आशाओं के मान्यताओं के अनुरूप ढूँढ़ने की प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज के साथ जोत्तीकरण करता है और समाज द्वारा जीवित सदस्य के रूप में स्वीकार उभा जाता है। परिकार, आख-पड़ोस के लोग, विद्यालय व समाज की ओर इडाइयों निरूपित अपने गैर-तरीकों, मान्यताओं के विश्वासों के अनुरूप व्यक्ति, जो लोलने का प्रयास करती है, व्यक्ति समाज के अन्तीकों जो अपनात्मा हैं जो उसके मूल्यांकन के उपरांत अपनाने योग्य होता है। सामाजिकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के व्यवहार की नियमित रूप प्रतिविधित करती है, समाजिकरण प्रक्रिया को मुख्यतः ही स्तरों पर विभाजित किया जाता है। (१) प्राधिकरण तथा (२) द्वितीयक / प्राधिकरण स्तर पर माता-पिता, परिकार, आख-पड़ोस तथा समुदाय जो समाजिकरण के मुख्यतः सरल पहल से चबूचित है, वही द्वितीयक स्तर पर विद्यालय, धर्म तथा राज्य समाजिकरण के मुख्यतः जटिल पहल है। समाज में चबूचित क्रम, समस्त, व्यवहार, ग्राम, आस्था व विश्वास ही शिक्षा दिये जाने के लिए विद्यालय नामक संस्था जो जन्म दिया, जो अव्याप्ति कर वालक समाज की विभिन्न घटिलताओं के सामने व्यवस्था स्थापित करने में दक्ष क्षमा है। इस प्रकार स्कूल संस्था के रूप में शिक्षा व विद्यालय गूलतः उच्च स्तर के समाजिकरण के दृष्टिव्यक्ति जो निर्वाचन करते हैं, इस प्रकार शिक्षा व विद्यालय

तथा समाज के मध्य परस्पर पुरकता का संबंध है।
समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा बालक - बालिका
मुख्यतः तीन प्रकार के व्यवहार प्रकारित करते हैं -
सहयोगपरक अनुइलन, तटस्थ भाव तथा विरोधी
प्रतिक्रियाएँ। समाज में सहयोगपरक अनुइलन प्रकृति
द्वारा है। जबकि तटस्थ भाव व विरोधी प्रतिक्रिया
हीत्याहित की जाती है उनके व्यवहार परिवर्तन
का निरंतर प्रयास किया जाता है, विवालय में ही
उनके व्यवहार का समुचित स्थान पायेगा
इस प्रकार समुदाय विवालय की समाजीकरण
की उच्चता स्तर पर रूप में होता है। पहल
समुदाय विवालय की यह जानता था विवालय की
समाज के प्रति भूमिका के दृष्टिकोण में वर्तमान
विधानशालीय के व्यवस्थाओं का अपलोडन करके उन्हें
सुन्धार आवश्यक है। इसी समाज की भी विधा
के प्रति उसकी मूलनायिकों के संदर्भ में व्याग्रह
बनाने की जरूरत है। शिक्षायी विषयों में प्रकृति
व समूप से छुड़ाव के अवसर हैं, विधानशालीय
आयोजना उसके व्यवहार में लाने तथा समाज
के द्वारा सहयोग के माध्यम से ही समाजी
करण की प्रक्रिया बहुत बहुलित की जाती

* विद्यालय में समाजीकरण की प्रक्रिया : विभिन्न बहुओं की शून्यिका व प्रभावों की समाजस =

हमारे लक्षण तक ही सीमित रहते हैं। हम परिवार एवं आश - पड़ोस तक ही सीमित रहते हैं। हम परिवार व आश - पड़ोस में बहुओं तक समाजीकरण का पुण्यम चरण चलता है, परन्तु वहाँ उनकी अपनी विविधताओं का सम्मान नहीं करना पड़ता, जिनकी विविधताएँ उन्हें विद्यालय में मिलती हैं। गिनन - गिनन, अमृ, निंग, जाति, जांग, संपदाय, संस्कृति, आचार - प्रथाएँ, आधिक समाजिक क्षेत्र आदि से संबंधित बहुओं, शिक्षिकों तथा वे अन्य उमंचारियों आदि की मीमूर्फटी, बहुओं तक लिए समाज के इन लघु रूप का विलम्ब प्रस्तुत करता है। इस प्रकार समाजीकरण हेतु बहुओं को विद्यालय में ज्यादा अपेक्षा प्राप्त होता है। विद्यालय में बहुओं ना होने समाज तक विविध रूपों से परिचित होते हैं। कौन विभिन्न प्रकार की शातिविद्याओं, आयोजनों व शून्यिकाओं से भी होठर अच्छे गुणस्त फ़ूल छार्थना, योग - व्यायाम, खेल - खेल, कहाना - शिक्षण और वारोपण, प्रगतियों, रेलियों, विभिन्न द्रिवसों की मनाई, जाने देते आधीरित कार्य उमों तथा अपने साथी - समर्थों, शिक्षिकों व अन्य लोगों तक साथ देने वाले लोगों, वस्तुओं तक आठन - प्रदान से भाव्यम से और विद्यालय - प्रतिनिधि, क्षेत्रों - प्रतिनिधि, बाल - संसदि व विद्यालय से देने वाले विभिन्न उमों में मिलने वाले शून्यिकाओं द्वारा होते हैं। वही विद्यालयीय घीन्हन में हस्त अनेकों कार्ड मीमूर्फ दाते हैं, जिनके प्राच्यग से समाजीकरण की प्रक्रिया संचालित होती है।

विद्यालय जीवन तक विभिन्न काल वर्षों तक समाज समाजिक अंतः किया तक विभिन्न अपेक्षा प्रस्तुत करने हैं वह समाजिक अंतः किया मूलतः सहयोग, प्रतियोगिता, संघर्ष, व्यवस्था तथा आत्मसातीकरण के रूप में होती है। शिक्षा, शिक्षण व विद्यालय की क्षमता समाज व अपनी आशाओं तक

अनुरूप दिया है। अमः समाज की इकाई के व्यक्ति पर समाज सीच व समझ रखने वाला उनका समूह निरंतर समाजिक आदाओं की शक्तिचिह्न, निर्मित व पुनर्निर्मित करते रहता है। हमारा समाजिक, संस्कृति, आर्थिक व राजनीतिक विधाएँ विंतन शिक्षा, शिष्टण व विद्यालयों की दिशा तथा करते हैं। परंपरा व रुदिगों द्वारा स्थापित वाद और स्वतंत्रता, समानता, बधुत्व व न्याय की मान्यताओं वाले लोकनीतिक मूल्यों के रूप में प्रतिवट के हृद से उपजा शैश्वलेषणात्मक संवाद ही शिक्षा, शिष्टण तथा विद्यालयों के लिए आधार प्रस्तुत करता है। शिक्षाके शिक्षायी विषय-विधान संस्था विद्यालयी विषय-विध-गिर्द विद्यालय का समूह समाजिक अवधारणा, भाषा: बहुली जरूरत, मान्यताओं व विकासों के अनुरूप शिक्षा के व्यवस्था के निर्मित करते रहता है। और इस पुकार शिक्षायी विषय-कस्तु में भी आवश्यक परिकर्तव्य होते रहता है। अतः शिक्षायी विषय-कस्तु, स्वतंत्र न छोड़ समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था की आवश्यकताएँ विधारणीतिक द्वीपित आदि शिक्षायी विषय-विधय-कस्तु, के तथा करते हैं। अतः हमें शिक्षायी विषय-विधय-कस्तु को इस विस्तृत दृष्टिकोण से धेखना होगा ताकि आवश्यकता व उपयोगिता के आधार पर निरंतर इसका अखलन, मूल्यकरण, व मूल्यांकन होता रहे और इस प्रकार अनुप्रयोगी विषय-कस्तु के फैले कोरों, विद्यालयों व शिक्षाओं के लिए वाले समय व सम की बचाया जा सके।

* ज्ञान की अवधारणा: द्वारा निकु परिप्रेक्षा के

⇒ शिष्टा व दर्शन के सेत्र में ज्ञान शब्द का प्रयोग बहुत अधिक दिया जाता है। लोन का दर्शन के साथ व्यनिष्ट संबंध है, ज्योति दर्शन का अर्थ है ज्ञान के प्रति उम्मीदें, चेगत, आत्मा और परमात्मा आदि के विषय में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना। ऐसे ही ज्ञान डीवी मटीकथा ने कहा है - "दर्शन का मुख्य उद्देश्य है वास्तविकता का ज्ञान।" दर्शन की दीन शाखाएँ हैं -

(१) तत्त्व मीमांसा (२) ज्ञान मीमांसा (३) प्रूप्य मीमांसा दर्शन की इसरी शाखा ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत ज्ञान के स्वरूप, विधियों तथा स्रोतों आदि की विवेचना की जाती है।

ज्ञान का प्रत्यय / अवधारणा / अर्थ - ज्ञान की दर्शनिकु अवधारणा को ज्ञानके के लिए इसका शाब्दिक अर्थ ज्ञान (आपश्यक) है।

ज्ञान का शाब्दिक अर्थ - ज्ञान शब्द, दीर्घकृत जीव धातु से बना है जो 'ज्ञानना' अर्थात् प्रयोग होती है। किसी वस्तु अवश्य आदि के बारे में ज्ञान आरंभिक ज्ञान उनसे संबंधित सामान्य ज्ञानकारी अध्ययन लेवना पर आवश्यक ज्ञान है।

जब हम शिष्टाण हैं तो हम ज्ञान प्रदान करते हैं इसलिए जो ज्ञानना आपश्यक होता है उसे हम ज्ञान के लिए उसे उपयोग करते हैं, तुम्हे हम विद्यार्थी की जगह ज्ञान से परिचय प्राप्त करें। क्या हम जो ज्ञान उसे हैं, रहे हैं कि हम पूर्ण विद्याय ज्ञान हैं सत्यता से पूर्ण है यह सब लेख हम ज्ञान है सब समझते हैं या इन सिद्धान्तों का ज्ञानकारी शिष्टाण को होना अति आवश्यक है। शिष्टा का प्रयुक्त उद्देश्य ज्ञान प्रदान करना है, तथा जो भी तथा हम पढ़ते हैं तो वह सत्य पर आवश्यक है सत्य और ज्ञान होना, यह इसरे से जुड़े हैं जोन में जोई जातर नहीं है। ज्ञानका सत्य ही ज्ञान है। समाज के लिए ज्ञान की शिष्टा है। सभी प्राचीन ऋषियों ने तथा गुरुओं द्वारा गुरुलिङ्ग संतों का प्रयग ज्ञान हुआ तर उन्होंने उसका प्रचार प्रसार दिया इस प्रकार

से ज्ञान की उपर्योगिता शिखा ही सिवूं करती है। ज्ञान की इसरी अवश्यारण है कि ज्ञान सख्त है या स्थल है यह बात हम उमा अध्यापक के प्रारा विद्यार्थियों में ज्ञान सख्त है से विषयान रहता है। इसरी और पुस्तकों में जो भाषा लिखी है वह ज्ञान स्थल है। ऐसुं उदाहरण के प्रारा यह समझ सकते हैं, योंसे पानी जो नमक डालते पढ़पाए नमक के धोने का है वे धूल जोते हैं आर पी वे उन धूते हैं वे दिखाई देते रहते हैं कि उसी प्रकार से यह ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान छोड़ दे ज्ञान के पहले हैं - पृथग्जन ज्ञान और परामर्श ज्ञान।

प्रत्यक्ष ज्ञान मनुष्य अपनी जानेन्दुष्य से अनुभूति के प्राप्त करता है। परामर्श ज्ञान हम दूसरों से कृपनी या पुस्तकी छारा प्राप्त होता है विद्या में दोनों प्रकार के ज्ञान का महत्व है। ज्ञान के लिए अनुभूति भाग है यह हम ऐसे ही की देखते हैं हमें उसको इंग, रूप, आठार दिखाई देता है तो वह हम इस पृष्ठी का आठार जापा सकत ह सर्व उसके पृष्ठी रूप का देखती है। ऐसे प्रकार से हम ज्ञान के कई स्तरों को पाते हैं और विभिन्न प्रकार से मन में कई प्रकार ही सृजन होता है उसे हमें अनुभव लेना नहीं विकल्प के माध्यम से प्राप्त करते हैं।

* शिक्षा : सामान्य अवधारणा , उकेरण से विद्यालयी
शिक्षा की प्रकृति :-

शिक्षा शब्द आवनामक है और इसमें
संचालन - क्रिया अधिक है। इसलिए कई दृगों से
इस का शब्द कुँ अनेक अर्थ उत्पन्न हो रहे थे
और ही रहे हैं। शिक्षा के विषय में परिपूर्ण
सर्वाधीन परिभाषा शायद ही कभी ही जा सके।

शिक्षा का उकेरण से मूल्य :-

शिक्षा के उकेरण कुँ ही गाड़ों में बौद्ध
ज्ञान है - व्यक्तिपरकू व समाज के संरचना के
तरपर। अर्थात् लोगों की शिक्षा की जाने वाली
प्रक्रिया से अपेक्षा ही सकृति है तु उससे एक
एक प्रकार के व्यक्तित्व के निर्माण होता। अब
शिक्षा अवस्था से तात्पर्य सिफ़ विद्यालय मात्र
नहीं है, बल्कि समाज की सभी दृस्थाएँ हैं, जो
व्यक्ति के संपर्क में आती है। 'शिक्षा' शब्द
एक सराहनीय प्रक्रिया के बिले उद्योग होता है।
इसलिए हमारे पास 'कृशिक्षा' या 'खराब शिक्षा'
जैसे शब्द भी हैं। शिक्षा जैसी प्रक्रिया के बारे
में सिफ़ शिक्षा विचारक ही नहीं बल्कि आम
इसान भी एक साध रखता है। इसका प्रमुख
कारण तो यही है तु वो भी उसमें आगीहार
है और उससे प्रभावित भी है। शिक्षा कुँ से
सबकी चिंता का विषय है। उसी प्रशिक्षित
शिक्षक के पहाने की लैठ उसके विद्यार्थियों
एवं उनके आमभावकों के राय अलग - अलग
ही सकृति है। अतः शिक्षा के उकेरण का प्राप्त
करने की कीड़ एक आदर्श समझ नहीं है
सकती है। इनकी समझने के भी विभिन्न
दृष्टिनक आधार ही सकते हैं।

(१) शिक्षा का उकेरण प्रेरणा होना और सीखने के
अवसरों में वही करना, जिससे वर्चों में ज्ञानावन
की कला का विकास हो सके।

(२) वर्चों में स्व-चिन्तन तथा जिम्मीहारी होना

आधरण का विकास।

(३) उनमें सौन्दर्यवौद्ध विकसित करना, जिससे वे
आमाधुक से सुस्कृतिका धरोहरे के प्रति सम्मान
का जाव रख सकें।

(४) सत्यनिष्ठा, ईमानदारी तथा आत्मविश्वास का विकास

(५) सामाजिक मूल्यों का संवर्धन

(६) अपने और दूसरों के लिए उपराजनक समरसता

के लिए जाग निकास।

(७) अपने राष्ट्र के लिए उपराजनक विविधता के समझ

(८) स्वयं रखे बहुति के साथ सामर्व्य बनाना

(९) पर्यावरण के प्रति खेत्रीकरण के लिए बनाना।

जिससे उसके संरक्षण की व्यवस्था की जांच हो सके।

शिल्प की पहुंच

(१०) शिल्प आजीवन चलते वाली प्रक्रिया है। - शिल्प

जैव एवं आरम्भ घोटा है तथा मृत्यु पर्यावरण चलती है।

(११) शिल्प इसके विकासान्तर्गत प्रक्रिया है - वैस्टालोवी

का कहना है कि, "शिल्प मृत्यु की जन्मजगत

ज्ञानिका का उत्पादनाविकास, समयपर इसके प्रगतिशील

विकास है।"

(१२) शिल्प सर्व संश्लिष्ट प्रक्रिया है - शिल्प की प्रक्रिया

में जीव विकास घोटा है, इसमें विकासित घोटे वाले

अंग साथ - साथ जारी करते हैं।

(१३) शिल्प इसके विमुखी प्रक्रिया है - इडम्प्स का कहना

है। शिल्प इसके विमुखी प्रक्रिया है। इसके इड और

विद्याधी और दूसरी और शिल्पक रहता है। इस

प्रक्रिया में एक सिरे पर अध्यावक रहता है और

दूसरे सिरे पर घोटा रहता है। इड कहता है,

दूसरा सुनता है तथा इक पढ़ाता है, दूसरा

पढ़ाता है। अद्यावक अपने व्यक्तित्व रखने जान

से घोटे को प्रभावित करता है।

(१४) शिल्प इसके विमुखी प्रक्रिया है - इडम्स की विजय

का दृश्यने न भी माना है; उन्होंने इड और

तथा जीड़कर उसने शिल्प के विमुखी के

घोटे जिमुखी कहा है। इसमें शिल्पक इन

घोटा ते अलावा, सामाजिक तत्वों का भी

भरपूर प्रभाव है।

(6) शिक्षा एक सचेतन सर्व प्रयोगशील प्रक्रिया है -
 इसमें नं लिया "शिक्षा एक सचेतन एवं विचारपूर्ण
 प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति इसरे पर दसलिए
 प्रगाढ़ कालता है तिइ इसरे का विकास और
 परिवर्तन ही सही है।"

(7) शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है → शिक्षा सिवर
 नहीं, विकासी-मुख्य है। इसमें परिवर्तन होता है
 शिक्षा के गतिशील रूपरूप के सभी शिक्षाशास्त्री
 स्वीकार करते हैं। शिक्षा जीवन के लिए है।
 शिक्षा हवय जीवन है। जीवन विकास है। जीवन
 का अर्थ ज्ञान है। इसपुकार शिक्षा गतिशील है।

(8) शिक्षा एक परिवर्तन → शिक्षा - ज्ञानियों का विचार
 है तिइ एक परिवर्तन है। यह व्यक्ति के व्यवहार
 एवं आच्याद - विचार में परिवर्तन लाती है।
 शिक्षा ज्ञान में परिवर्तन लाती है और बुलड
 की ज्ञानताक्षील बनाती है, अज्ञान के बहल ज्ञान
 का अंडार अरती है तथा विचारी, आदर्शों एवं
 अनिष्टरणाओं में परिवर्तन लाती है।

UNIT - 4

* गांधी जी का शिक्षा दर्शन :-
 के गांधी जी का शिक्षा दर्शन उनके धीरत दर्शन पर आधारित है। उनकी सत्य, कौटुंबी, द्वयोग निष्ठा एवं सहानुभूति आदि ग्रान्तिग्रन्थों में श्रद्धा और और धीरत इही। इन ग्रान्तिग्रन्थों में श्रद्धा, शिक्षा द्वारा ही प्राप्त हुआ जा सकता है। गांधीजी के धीरत में सामाजिक, राजनीतिक आधिकार एवं अच्छात्मक सभी पढ़ों को स्थान मिला। गांधी जी का शिक्षा के दर्शन के इनके धीरत दर्शन का गतिशील पहल है। गांधीजी के शिक्षा दर्शन के प्रयोगवाद का आधार समनवाद पाया जाता है। इनके शिक्षा दर्शन में गोतिकारी दृष्टि भी दिखाई देती है। गांधीजी ने उत्पाद किया तो मार्जन बनाने की संस्कृति ही है। इसके निए ज्ञानशयन है तिप्रयोक्त बोलक आपने बचपन से ही अपनी रौते कमाने के लिए आकर बनाये तथा शिक्षा में श्रम नहीं केन्द्रित जान तो साथ भोड़ने की समता होनी चाहिए।

* गांधीजी ने शिक्षा के आधारभूत सिद्धांत दिये जी निम्नलिखित हैं :-

(1) शिक्षा द्वारा बोलक में शारीरिक मानसिक समता आदि विकसित किया जा सकता है।

(2) शिक्षा का बोलक वालिकाओं में निहित समस्त मानवीय गुणों को विकास करना चाहिए। सात से चाहे वह किसी बालकों तिकिया जाने वाले निशुल्क तथा अनिवार्य होनी चाहिए।

(3) शिक्षा का माव्यम् मातृभाषा बोना चाहिए ताकि घोष में उसके प्रति व्यवधारिक दृष्टि की उत्पत्ति हो सके।

(4) शिक्षा ऐसी ही जिसे प्राप्त करने वाले किसी न किसी व्यवसाय में लग जाए।

(6) इसी उघोग के कारण शिल्पा की स्नावलंबी जनाना चाहिए।

(7) स्वतः ऐसा होना चाहिए जहाँ बाहर अपनी पुकार के उद्योगों कारण नई-नई खोजें करता रहे।

* गांधीजी के अनुसार 'शिल्प' का अर्थ है कि शिल्प के मेरा नात्पर्य बालक सभी मनुष्यों के शारीर, मन तथा आत्मा के उत्कृष्ट होने के लिए विकास करने हैं। साहात्तर शिल्प की भूमि अतिम् सीढ़ी है जो ही प्रधम साधान थहराती है। पुरुष-स्त्री तो साहूर-शिल्प उसे का साधान है। जनका विवाह वा कि शिल्प का संकलन है। उनका शास्त्रियों की बालक किकास करना चाहिए। विससे वह पूर्ण मानव बन जाए। गांधीजी ने लिया है कि उस आदमी की सच्ची शिल्प मूली है जिसका शारीर सूचा हुआ है कि उसके शारीर उसके हाथ में २८ सड़ और आराम २७ असानी के साथ उसका जलाया हुआ काम हो, उस आदमी को सच्ची शिल्प मिलता है कि उसका बुद्धि कुछ ही शोत्र और व्याय दर्शा है। शोत्र और व्याय उस आदमी की सच्ची शिल्प मिलते हैं।

* गांधीजी के अनुसार 'शिल्प' के क्या उद्देश्य हैं?

(1) संखानित व्यक्तित्व का उद्देश्यः—

(2) जीवितीपालीन का उद्देश्यः—

(3.) सारकृतिक उद्देश्यः—

(4.) गुविन का उद्देश्यः—

(5.) सर्वान्य उद्देश्यः—

(6.) सर्वान्य उद्देश्यः—

* रवीन्द्रनाथ टैगोर के लाइनिंग विचार :-

टैगोर उच्च कौटि के मानवतावादी है। मग्ना
वास्तिव्य की शरीरा गे उनका विश्वास होता है।
मानव जाते हुए उद्धार कर्त्ता वाहन की ओर,
मनुष्य के मृत्यु का उत्तरण का शौर निरोध
करते हैं। उन्हें विश्वास हो कि जो हुनिया-
मुलरक्षण से मानवीय हुनिया है। वे मानवों की
उड़ी इश्वर की भी वस्ती घर खोखला नहीं है।
जो पर किसान हैं वे घोट रहा है।

टैगोर अंतर्राष्ट्रीय के अवरोध हैं।
बहुत कई समर्थक थे और वे बालकों में अंतर्राष्ट्रीय भावना की प्राचुर्य करना चाहते हैं। वे
अपने राष्ट्र से बहुत प्रेम करते थे और भारतीय
राष्ट्र की परिस्थितियों की सुधारणा चाहते हैं।
उनकी दैश - भवित्व और उनका राष्ट्र - प्रेम
अंतर्राष्ट्रीयता के मार्ग में दायड़ जाती है।
वे समस्त विश्व की एक समझते हैं और इस
इस विषय पर बनाना चाहते हैं तो वे इस विश्व
नागरिकता के उत्तर समाज का शाप रख सकते।

* टैगोर के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :-

टैगोर ने अपने लेखों में शिक्षा के
उद्देश्यों की व्याख्या की है। उन्हें स्वेच्छा शरीर का
बहुत महत्व होता है, उन्हें शारीरिक विकास की
शिक्षा की शिक्षा का प्रथम और मुख्य उद्देश्य
प्रतीक्षा है। उन्हें अनुसार शिक्षा का फुलरा उद्देश्य
लाइनिंग विकास थी। वे पुस्तकों शिक्षा की
विरोधी थे, वे स्वर्तन विठ्ठल के समर्थन में सही
पर अधिक भार में डलकर विठ्ठल रखी उल्पना
की शक्तियों का विकास आवश्यक है, शिक्षा
समूहों में वे सभ्य अनुशासन का निवेदण
करते हुए व्यक्ति के अनुभव १९७ अध्यात्मिक
विकास पर लगते हैं। वे मुकुटों की नपस्ता
करते हुए परामर्श देते हैं। वे इस प्रकार की
व्यक्ति अध्यात्मिक शक्ति में विद्याम

कुरे और अपनी आत्मा की सभी प्रकार की सहा
यि मुक्त हो। इस प्रकार उगोर शिलाजी की समाधि
करना अद्यात्मिक विकास के लिए बहुत आवश्यक
समझते थे। उगोर रुक्त उच्च ऊरि के अंतर्गत छोड़
था। उन्होंने पूर्ण-परिवर्तन का अनुरूप
सम्भव रूप स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस
प्रयत्न से के शिला द्वारा बालकों में अतराष्ट्रीय
कृष्ण की प्रियता विकास करने के लिये लंबे
दूर दिनाँ पहुँचे हैं।

* उगोर का द्वारा पाठ्यक्रम :-
उगोर ने पाठ्यक्रम को विस्तृत बनाये
की प्रागशी दिया है। उन्होंने अनुसार पाठ्यक्रम
की उठना व्याख्या दी। चाहिए की वालक
जीवन के सभी पक्षों का विकास हो सके।
उगोर ने उसी विश्वास पाठ्यक्रम की जीवन
वही बनायी। उन्होंने पाठ्यक्रम के शुरूआत में
सामान्य विचार शाम-तट प्रस्तुत किये हैं। और
उन्हीं के अन्यार्थ पर कथा जा सकता है कि
वे शृंस्कृति की विषयों की बड़ी मुद्रितव्यपूर्ण
स्थान करते थे। विश्व-भारती में इतिहास,
शृणोल, विज्ञान, साहित्य, प्रवृत्ति आद्याद्यन आदि
की शिला की ही वाती है। साथ ही ज्ञानान्वय
भौतिक-अध्ययन, भूमण्ड, विज्ञान, नृजीवी,
मालिक इत्यादि की शिला की जी
विशेष घटना है।

* डॉ. जाकिर हुसैन का जीवन दर्शन एवं शिला

जीवन :-

डॉ. जाकिर हुसैन का जन्म 8 फरवरी 1897 को गुजाराया
द्वार्यशास्त्र में इन्द्रानी उच्च शिला प्राप्त की। वह 1990.
में इन्होंने व्याख्या भित्ति की स्थापना की जो वाद
में दिल्ली में स्थापित हो गया। 1936 को
वीसिंह शिला समिति के अध्यक्ष बने। 1948 के
1956 तक अलीगढ़ विद्यालय के कुलपति रहे।
1957 को में विद्यार ते शज्जपात बने। 1962 को
गारत के प्रराष्ट्रमन 9 के 1954 में पद्मभूषण

१९६९ में भारतरत्न पुरस्कार दिता । ३ मई

1969 को इनकी मृत्यु हो गई ।

वे एड मूल रूप से यह शिल्पी
पर्स के उच्च कला को पढ़ाते थे। वे वे प्रायमें
कलाओं की भी पढ़ाते थे। उनका कला योग्यि
निकल तु समझ मानवों का जीवन के जैसा है।
वे यम निरपेक्षता के समर्थक थे। वे
भव्यात्मिक व्यवधार को ही मुल्यः मानवीय एवं
अष्ट व्यवधार समझते थे। वे समाज से पड़
विज्ञि को महत्वहीन मानते थे। वे बाह्य जगत्
के सामाजिक और वैज्ञानिक मानते थे। उन्होंने
अनुसार ज्ञान को प्रकार के देते हैं।

(१) द्वायात्रुमूर्ति ज्ञान (२) श्रुति ज्ञान (सुनकर)

(स्वयं कुरुते)

इसमें स्वयं के अनेक ऐसे पृष्ठ हों जो वास्तविक
एवं व्याप्ति ज्ञान हैं। वे अद्वितीय के पुण्यार्थी
मातृभाषा के स्थान पूर्व यहि कुसरा भोजि योगी योगी
जाए तो घोर हिंसा होती है। वे मध्यम जनतमवाही
एवं सच्चे अपीली में ज्ञानीवाही छोड़ते हैं। इन्होंने ही
ज्ञानीयी के उनियाही शिला के सिद्धांत की
मुर्ति रूप प्रकार दिया।

* शिला देशन :-

(१) वे सभी शिला के समर्थक थे।

(२) विद्यालय की सामुदायिक एवं सौसाक्षीति के लिया
का केन्द्र बनाना चाहिए।

(३) सामाजिक सेवा के विधात्यी के शिला के
अंग बनाना चाहिए।

(४) विद्यालय की कार्यशाला के रूप में वितरित
करने वाले विद्यार्थी दिया।

(५) ज्ञान के पृष्ठ आख्या बोहाने पर बोल दिया।
उनका लक्ष्य था शिला की कम से ज्ञान
कम लक्ष्य के प्रारंभ हो मरितल्कु को खत्तत रूप
से विकास होंगा।

(६) डॉ जाकिर हुसेन जीवन की सरस्ता, व्यापकता, विविधता और व्याख्याता को विवारण के लिए बनाने के पछादान हैं। उनका महत्व या कि वही वैद्यतर शिक्षा शिल्प है जो उच्चाग के नियम समाज के लिए प्रभावी है।

(७) वे आत्मानुभूति को दी वास्तविक शिल्प मानते हैं। वे शिल्प का एक माध्य उद्देश्य जीविकोपार्श्व में नहीं मानते हैं। उनको उच्चाग या कि शिल्पीयों मानना अस्वीकृत है। विकास का नाम है।

(८) वे राष्ट्र में सड़गा, दृष्टि, भाष्ट्रति का एक गाय साधन शिल्प को ही मानते हैं। राष्ट्रीय जीवन में शिल्प सुख छुल है जो अतीत की वर्तमान से जड़ता है।

* शिल्प के उद्देश्य : -

(१) व्यक्ति को उत्तीर्णः प्रदान करना।

(२) व्यक्ति को शाश्वत मुल्यों व आदर्शों की प्राप्ति और सांस्कृतिक, उपलब्धियों से अवगत करना।

(३) व्यक्ति को वाल जगत से साझाकार करना।

(४) पुरिवर्तनशील विश्व समाज के अनुरूप वाल को को फौलने का उद्यतन करना।

(५) वाल को को शास्त्र जगत से सामिलत्य हुए शारीरिक शान्तियों का विकास उन्होंना।

(६) सांस्कृतिक जीवन में अपनी आजीवारी निष्ठा

* ३-१ के अनुसार पाठ्यक्रम है -
को जानिरु हुसैन की शिला के दर-
रत्ते पर को को पढ़ायेगा में शामिल रखा-
निशेष शिला के तहत विज्ञान के पाठ्यक्रम
में शामिल किया । शिला के दर स्तर पर यह
शाखा एवं इतिहास के पाठ्यक्रम के शामिल
किया गया ।

* शिला के कार्य : -

- (1) शिला का प्रभाव हायल राष्ट्र के प्रति है।
- (2) शिला का लक्ष्य विज्ञान में संथ की पृष्ठी
की एवं उनके लिए उत्साह पूरा करता है।
- (3) शिला का कृत्य बालक की मानसिक एवं
शारीरिक शक्तियों का विकास करता है।
- (4) समाज में अज्ञानता, गरीबी एवं व्यवस्था,
गिरावट शिला के ही कारण है।

* शिला विधि : -

- (1) अन्य विधियों के अतिरिक्त हो, जानिरु हुसैन
के कार्य की शिला के साप चोड़ने की प्रक्रिया
पूरी हो दिया ।
- (2) स्वानुग्रह, विद्या-विधि, स्वाच्छूय, पृथोग-विधि
प्रौढ़ने एवं खेल विद्या का प्रयोग किया ।

* इन्द्रीय शिला के पार्य स्तरों में विभाजित किया है।

- (1) पार्यग्रन्थ शिला ।
- (2) पूर्ण पार्यग्रन्थ शिला ।
- (3) पार्यग्रन्थ शिला ।
- (4) पृथ्य शिला ।
- (5) विशेष शिला ।

* ଶିଖୁମାର୍କ କୁ ଶିଳା ହେଠାନ ରୁହି ପଲାନ ଦର୍ଶନ :-

गिजुआई का जन्म 15 November 1885 ई.
कुंडी सौराष्ट्र के विनल गाँव में हुआ था। इनका
पुरा नाम गिरधारीकुर कागवान था वही बदोका था।
लोग इन्हें गिजुआई के नाम से ही पुकारते थे।
वे पढ़ाई के काहे कठालत में आदिक दिन तक
इनका मन नहीं लगा। उन्होंने वकासत दोड़ फी
ओर शिखित बन गये। अब उनकी आदात
माता-पिता परिवार और विधारथ बन गया।
उन बालकों के कठालत करने की दृश्या घरों
उपरे परिवार में कुछ कहने की दृश्या घरों
की स्पर्तगता नहीं गिलती थी। उन्हें मातापिता
के आचारादों को सहन करना पड़ता था।
उन्होंने विद्यारथों में श्री पद्माचल के नाम पर
दाट-डेकर तथा दिल्ला के शिकार होना
पड़ता था। इन सब के विरुद्ध माता-पिता
शिल्पकारों की अदात में उन्होंने बालकों के पहुंच
में कठालत की ओर बढ़ती की शिल्पकार घर
गोचरि नितन किया। इसके लिए उन्होंने
प्रचर साहित्य का निर्माण किया। और बालकों के
भवित्व के सुखमय बनाने का असुरक्षा उपाय
किया। गिजुआई इस समय के शुभराम में
स्थापित हुए। हिंदू दलिला मुत्ती विधाधी जून
के आचीवन सहस्र बन गये। इस संस्था
द्वारा इक बोलभवन, चलाया जाता था। जिसमें
गिजुआई ने आदाय कर्म में कार्य प्रारंभ
किया।

तिथा । 1920 में गिरजाहाउने की दृष्टि स्थापना मुरी
विधायी अपने मैं एक बालमंडिर की स्थापना
की । इस बालमंडिर में २५ वर्षीय तक आयु ८
वर्ष की आयु वाले ७७ वर्षों की उम्र
लक्ष्मा उनके की ओष्ठ शिक्षा पढ़ने की
शास्त्रीजी की तरह गिरजाहाउने की शिक्षा
की छात्र में कामी, चरित और श्रद्धा । वे
शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष - वर्ष प्रयोग करते
लक्ष्मा की जाय उत्तर थे । इसलिए इन्हें कल्पा के
शास्त्री के नाम से जाना - जान लेगा ।

गिर्जाघर के सिद्धांतः —

(१) बाल हेतु शरणः —

गिर्जाघर के साथ-साथ रक्षणा के लिए अगस्त 1920 से जून 1936 तक छोटे-छोटे वयों के साथ-साथ रक्षणा के लिए उनकी हेतु करते रहे। उन्होंने बाल गिर्जे के समीकरण माना, और बालकों को उष्ण गिर्जे के हृष्टपता। यथा कि उन्हें वर्त्या के गिर्जे के हृष्टपता का उपायी बनाया और इस समय में तरह बालकों की उपासना करते रहे, उनकी श्रीना करते रहे तथा उन्हें अच्छे भविन बीताने, की कला सीखाते रहे। इन सब से बालक हेतु परामर्शदार व्याख्याता समाज सेवा आदि का पात्र पद्धति थे। इन सब कार्यों में गिर्जाघर साथ-साथ रक्षणा के लिए आरोग्य के लिए लगातार थे। उनके इस शुभ कार्य के लिए उन्हें मुख्य वाली मात्रा के लिए मानते थे। यार करते ही आरोग्य के लिए आरोग्य करते थे।

(२) बाल खगत से, बाल अस्थयनः —

गिर्जाघर के बाल-खगत का पात्र माया जमा होने वयों की उनियों से पूर्ण परिचित थे। युवा परिवर्तन के साथ-साथ उन्होंने उनके लिए अच्छे विकल भविन लिए तु कला में ही परिवर्तन आया बोल्ड उसका प्रभाव वयों पर भी पड़ा।

(३) बाल समता : —

बालक के पास अधिक शास्त्र दर्शन समताएँ छिन्नी हैं। यहां से उन्हें उचित वातावरण मिलता चाहिए। उसी वातावरण में उनका हिस्सा विकास हमें है। वे हर कार्ये रखते करते हैं जैसा चाहते हैं।

(४) बाल सेवः —

श्रीललिल जिज्ञान ने कहा है कि मार-घोटकर या कृष्ण में हम हम भर दें।

लिये अपनी बोत बातें से मनवा दूक्हे हैं परंतु
वह अंतरआत्मा से सबीं करेगे दूसरे से लड़ते हैं ॥

(६) कल्पनाशक्तिः :-

हर वातों के स्वयं करने की कल्पना उत्तरता है
तथा उसे हृष्टम् द्वारीकृति से करना भी है। उद्योग
के द्वारा कर्त्तव्य के कल्पनाशक्ति में काफ़ी
विचार दीते हैं। वह नायक की तरह अपने डी
दालन या नक्ल करने की कौशिष्ठि भी उत्तरता
है। वह जो कुक्क भी लड़ता है उसे मुक्त छप से
होने का प्रयास उत्तरता है।

* बाल साहित्य में गिर्जुभाई की कैफ़ीन :-
बाल साहित्य में गिर्जुभाई डी. हेन महत्वपूर्ण है। इन्हें पूर्व
गुजराती में भी श्रीदलघु राय ने गीत लिखी। उसके
बाद 1915 में डी. हिमतलाल गणेश जी ने ऊर्ध्व संग्रह
प्रकाशित किया था। इसके अंदर आंदोलन प्रारंभ होने पर
गुजराती में बाँधीकादी विचार घारा जी ए पठड़ने लगा।
इसी काल जी बाल-साहित्य में भी उत्तरता है। गिर्जु-
भाई ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने
एक नए शूण का सुविधात दिया। गिर्जुभाई ने अपनी
स्वेच्छा में कव्यों की रुचि व छोटों का ध्यान
रखा। उनकी आशु और विचास के अनुकूल साहित्य
की रचना की। उनका मत था कि बालकों की इस
थोड़ी धीरा चाहिए उसके सवाये कुछ निष्ठिले।
कविता या कहानी में इनकी शास्त्र धीरी
साहित्य कि वह बाल मनु पर प्रभाव डाले।
गिर्जुभाई उसके कुछ उद्धरणों को हिन्दी में भी
अनुवाद करा है। मुख्य, ब्राह्मण, मुत्तु ता भाई आदि
कृष्णनियों दिन्ही में वह साधा से पढ़ जाते हैं।
गिर्जुभाई जी बाल साहित्य का समाट उठा
जाता है। बाल घृणत की जैसी जानकारी उन्हें
भी जैसी उमं लोगों की धोती है। गिर्जुभाई बहुत
शिल्प तथा बाल शिल्पा शास्त्री तो ये ही वे
बाल विचास के प्रारंभिक दृश्य के दृष्टि शिल्प
पुरिमान भी सिद्ध होते हैं। बाल शिल्प के बगत

मैं गिन्हुआई की एक शान्तिपत्र कृति। दिवाहपूर्णा, है।
इसकी चारों कंठरे हुए गिन्हुआई की लिखा है दिवा-
हिंडा प्रायमिक पाठशाला की एक स्वस्थ संगतीयना
है तथा अविष्य की नवीन प्रायमिक के मनोहर
तथा अपष्टु झूप की एक सुंदर झुलक है। इसकी
प्रायमिक विशेषता यह है कि यह संपूर्ण पुरस्तु
उदानी की शौली में लिखी गयी है।
प्रायमिक शौला में 'आधा' की शिल्पा, उनकी
कुचरी, उल्लेखनीय मुख्यक हैं जो शिल्पा का है
से संवित हैं।

गिन्हुआई के अनुसार सबसे पहली वाचन
पर बल है ना चाहिए, पहले पढ़ना और बाढ़
में लिखना अचान्क, सुनोचल, को पालन करना
चाहिए। प्रायमिक शौला में 'आधा' शिल्पा में की
लीडलीटों ग्रामजीतों के माध्यम से कविता शिल्पण
का प्रारंभ करने की कहते हैं, कविता शिल्पण
में अधी में अर्थ व व्याख्या पर बल न है कु
रसात्मका पर बल है की वात करते हैं।

कविता शिल्पा द्वारा कोलडी में गाने का
शौक पैदा करना है। व्याकुरण की शिल्पा
व्यवहारिक झूप, संपादक के साथ ही दो जाए
अलग से नहीं। अनेक-अनेक में वास संदेश,
संवाद, विशेषण, किया आदि की परचान करना
सीखें। इतिविषय की कथनी के माध्यम से
सीधारा जाए। श्लोक और नक्सों की सुनायगा
से भुग्गील की शिल्पा की जाए और उसे
रोचक बनाया जाए। नाम का वस्तु देउर शिल्प
वनाने की कहे तथा उसको उड़ा भरने की
शी कहे इस तरह से चित्रकला की शिल्पा
की जाए। मध्यपुरुषों की जीवनी की लाली के
माध्यम से बताया जाए तथा ने तिक शुद्ध
प्रायमिक शिल्पा दो जाने चाहिए ताकि कहे जाए
न लगे। इस तरह इन उल्लिकों के गान्धारी
से गिन्हुआई न दिल्ली की जूँ समझने
का प्रयास किया है। कि हम वस्त्रों की कर्त्ता
पदमा चाहिए।

* जॉन डीवी का शोक्तिक विचार :-

आच्युनिक शिला में अमाधवाद तथा प्रयोग्यनवाद के अनुसार जॉन डीवी थे। उन्होंने कहा सामाजिक शिक्षा भीकर के सामाजिक पक्ष के प्रधानता देती है। शिक्षा का गुणवान् रूप व्याप्ति तथा सामाजीकरण करना है। अपनी शोक्तिक विचारों की नीस केरल रूप देने के लिए शन 1896 के में यह लेनोरेक्ट्री के स्कूल के नाम से विचार दुआ। इस स्कूल में 14 वर्ष के बालों का विवेत होते थे। स्कूल का चार कार्यक्रम विचारों पर आधारित था। डीवी के शिक्षा संबंधी कुड़ी स्वतंत्रता है जिनमें Democracy and Society, तथा School and Society अधिक प्रसिद्ध हैं।

* जॉन डीवी का शिक्षा दर्शन :-

दर्शन के जैतरे में जॉन डीवी प्रयोग्यनवाद का अधिक है। अतः उसके अनुसार दर्शन का लक्ष्य किसी आधारिताके सत्य की व्याख्या नहीं। प्राकृत मूल्य की पहचान है। वर्तमान दृष्टि के संघर्ष मुख्यतः नीकुं युग की समाजिक स्थितियों से उत्पन्न होती है। प्रचारता, उद्योग तथा विद्यान दर्शन इसी सामाजिक संघर्ष के अध्ययन है। जॉन डीवी शोक्तिक विचारों पर अपनी दर्शनिक विचारों की गहरी व्याप पड़ी है। उनके अनुसार दर्शन और शिला में उच्च संबंध है। केवल कार्य सामाजिक संघर्ष में प्रतिक्रिया मूल्यों का पहुँचाना और नये मूल्यों का स्वरूप है। इस कार्य शिक्षा के माध्यम से ही उत्पन्न है। अक्सर हूँ दूरिया के सहर ही कह सकते हैं। एक पुरानी मूल्यों का विस्फोट तथा नयी मूल्यों की विस्तृत उद्घोषणा कर सकता है। इस दृष्टि से दर्शन और शिक्षा एक ही व्याप्ति है। वाक्तव्य शिक्षा वह प्रतिपा है। प्रियुक्त सदारे गोलिक प्रवृत्तियों कोक्तिक तथा सांविग्रह व्याप्तिकील होती है। वह शिक्षा का सिद्धांत ही दर्शन ही व्याप्त है।

* डीवी के अनुसार शिला का अर्थ :-

डीवी के दृश्यों की स्पष्ट वाक्यांकन
शिला संबंधी विचारों पर है। उनके अनुसार
शिला भीवन की तेजारी की प्रतिया है। शिला
आत्मविश्वास की प्रतिया के अध्यवा अनुकासन है
जैसे विचारों की डीवी ने कौपण्य बदाया।
डीवी ने शिला की परिभाषा इन शब्दों में
ही १० शिला अनुभव का तुह पुनर्निर्माण का
पूर्णगठन है जो अनुभव के दिशा - निर्देश
की ओर्गयता बहाता है॥

इस परिभाषा के विश्लेषण से निम्नलिखित
तत्त्व प्रकट होते हैं। -

- (१) शिला अनुभवघन्य या अनुभव आकृति है।
- (२) अनुभव क्रियाशील ही हो पाये हो सकता है।
- (३) वही अनुभव शोषित या शिला होने वाला
है जो वस्तुओं के उन क्रिया क्रियाओं या उन
संकेतों की घोनकारी करते, जो पहले अद्वात्य
इस नई घोनकारी के फूलच्छब्दपूर्वक संकेती
सुराना अनुभव द्वयतः पुनर्गठित होगा।
- (४) पुनर्गठित अनुभव का परिणाम भूमि
धीना चाहिए जो व्यक्ति के आगे के अनुभवों
की दिशा दृथा उसकी आकृति की निर्मिति
करते हो ओर्गयता में बढ़ती है। इसी शब्दों
में शोषित अनुभवों ने त्रिवल वर्तमान की
अर्थपूर्ण बनाता है। बल्कि अविद्या का
निर्देशन भी करता है।

* शिला के उद्देश्य :-

डीवी के अनुसार अक्षतक शिला के क्षेत्र
उद्देश्य मिथीरित क्रम गमे है व भग्नपूर्ण है।
वस्तुः शिला का कुड़ी उद्देश्य नहीं ले सकता
है। शिला तो एक विचार है, इसका कोई
अपना लक्ष्य या उद्देश्य नहीं है। तथा कृपित
उद्देश्य नहीं है। तथा कृपित उद्देश्य नहीं है।
तथा कृपित उद्देश्य माता-पिता, शिलाकु,
शिलाकाशगी, शासन आदि द्वारा मिथीरित

किये जाते हैं। इस तरह शिक्षा के प्रभावों की उद्देश्य है वाह्य संवित है। शिक्षा से उनका कोई आगिड़ लगाव नहीं है। अतः डीवी शिक्षा को विकास मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया को कोई परिणीति नहीं है। शिक्षा और जीवन एक है। चूँकि विकास की कोई सीमा नहीं है। अतः शिक्षा की उद्देश्य को कोई सीमा नहीं है। प्रयोगनावी होने के नामे डिवी उसी पर्यामित उद्देश्य पर विवाद नहीं करता है। उसका जबन है। शिक्षा का सदृश तत्कालिक उद्देश्य छोटा है। और यहाँ तक किया शिक्षा - सदृश होता है वहाँ तक शिक्षा उस साध्य का प्राप्त करनी है। डीवी ने सामाजिक दृष्टि से शिक्षा द्वारा सामाजिक कुशलता की प्राप्ति पर अधिक ध्वनि दिया है, उसके अनुसार सामाजिक दृष्टि की कुशलता व्यक्ति है।

(१.) आधिकृत कुशलता।

(२.) निषेधात्मक नीतिकर्ता।

(३.) दीक्षारात्मक नीतिकर्ता।

* मारिया मौनटेसरी :-

डॉ. मौनटेसरी एक अध्यालिका घर्मावलीवी थी और आपने आत्मा परमात्मा में विश्वास रखती थी। इन्होंने विश्वास के शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने शिक्षा की कोई संपूर्ण व्योवहा व्यक्ति नहीं है वे उनके विकलांग एवं मरणकुहि बलकि और शिक्षुओं के शिक्षा के हीत में गुर्हि किया था। इन्होंने शिक्षु, मनो-विज्ञान और शिक्षा के संकरे में कहुत कुछ लिखा है तथा मौनटेसरी प्रणाली का विकास किया।

डॉ. मौनटेसरी ने स्पष्ट किया है कि अन्म के समय मूलव शिक्षा शारीरिक दृष्टि से तो पूर्ण - शिक्षुओं से तो उम विभिन्न डोता है परन्तु उसमें विकास के समताएँ पूर्ण शिक्षुओं से अधिक होती हैं।

इन्हें अनुसार शिला मनुष्य की इन घनमत्ता छमगाओं के विकास में सहायता करती है। इन्हें एक स्थान पर यह भी स्पष्ट किया है कि मनुष्य की एक ऐसा प्राणी है जिसमें नई-नई परिस्थितियों में समाधीन करने की दमता विकसित की जा सकती है। इनकी दृष्टि की बास्तविक जल शिला वह पुड़िया है जो मनुष्य की इन घनमत्ता छमगाओं के विकास में सहायता करती है। इन्हें एक स्थान पर यह भी स्पष्ट किया है कि मनुष्य होकर ऐसा प्राणी है जिसमें नई-नई परिस्थितियों में समाधीन करने की दमता विकसित की जा सकती है। इनकी दृष्टि से बास्तविक शिला वह पुड़िया है जो मनुष्य की घनमत्ता छमगाओं का विकास करती है और इसे नई-नई परिस्थितियों में समाधीन करने योग्य बनाती है। यह शिला की जीवन की तैयारी का साधन मानती है।

* मानटेसरी प्रबाली में उपयोग होने वाली उपकरण:

(1.) घरेलू उपकरण → घरेलू बातावरण में सारण, मध्यन, तेल, साफून, तेलिया, ऊपा, शिला, खुले भी पॉलेस, चुरू-चांगा, ऊची जाना बनाने की सामग्री, चाना बनाने के लिए बड़न और बंतन साफु करने का पाइपर आते हैं।

(2.) शौषिक उपकरण → शौषिक उपकरणों में क्षयामपूर्त, चांक-छस्टर, दूष अन्य उपकरण आते हैं।

(3.) शौषिक यंत्र → शौषिक यंत्रों में मानटेसरी का यंत्र जिस गए उपकरणों का उपकरण आते हैं। ये यंत्रों:- बैलन, बन, गोला, गोस, लड़ी, ता गट्ठा, ईग-विर्ग, लड़ी की टीकिया, विभिन्न, घनी उत्पल करने का, कोली, वंदीया, भिन्न-भिन्न रसाने वाले भोज्य पदार्थ भिन्न-भिन्न सुखंदी के पदार्थों से भरी कोतले पलेश काँड़ी, अंडों की काँड़ी, रंगने परिवर्तनी आदि।

* मानसरी प्रभाली के अनुशासन :-

मानसरी के अनुसार वास्तविक
अनुशासन आंतरिक होता है और वह इसकी नियंत्रण
शिशु शिला में रख होना चाहती थी। वह चाहती
थी कि मानसरी स्वल्पी भी शिशुओं को जैसा
पद्धतिवरण दिया जाए तिक्ति कुछ भी करने के
लिए पूर्ण स्वतंत्र थी उस वज्री के बाहर वो अनुशासन
की मांग है। मानसरी का तर्क है तिक्ति घन
शिशु अपनी परिस्थितियों का सवय अपलोडन
कर उसमें समायोजन के लिए जैसा उठना
उचित थोगा जैसा थी कुरेंगे तो कि वास्तविक
अनुशासन की ओर बढ़ेगे। इस प्रकार से पाप्त
अनुशासन को मानसरी ने नामित अनुशासन
कहा है।

* मानसरी प्रभाली के शिल्प :-

शिल्प के सवय में भी मानसरी
ने कुल मानसरी स्वल्पी के विषय
में साचा समझा और कहा है। इनकी शृंखला से
शिशु शिला के विषय को बहुत संवेदन -
शोल और मातृ - तुल्य व्यवधार उत्तेजिता,
घोना व्यादिता। इसलिए वह इस स्तर पर्याप्त शोल
महिलायों की नियुक्ति करने के पक्ष में थी।
उनका तर्क था कि महिला शिलिका ही शिशुओं
के प्रति संवेदनशीलता एवं महिला का उत्तम
के सक्षम है।